दार्शनिक गणितज्ञ आचार्य यतिवृषभ की कुछ गणितीय निरूपणायें

अनुपम जैन

सहायक प्राध्यापक, गणित, शासकीय महाविद्यालय, सारंगपुर (राजगढ़)

जैन साहित्य के अन्तर्गत गणितीय सामग्री से युक्त करणानुयोग समूह के ग्रंथों के रचनाकारों में आ० यतिवृषभ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। तिलोयपण्णत्ती आपकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति है किन्तु इस कृति का गणितीय अध्ययन पाश्चात्य गणित इतिहासज्ञों के सम्मुख समीचीन रूप में प्रस्तुत न हो पाने के कारण आपको अद्यावधि विश्व गणित इतिहास की पुस्तकों में समुपयुक्त स्थान नहीं प्राप्त हो सका है।

आ० यतिवृषभ के जीवन के बारे में हमारा ज्ञान अत्यल्प है। आ० वीरसेन एवं आ० जिनसेन प्रणीत जयधवला टीका तथा आ० इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार में उपलब्ध सामग्री के आधार पर आ० यतिवृषभ, कषाय प्राभृत के कर्ता आ० गुणधर के शिष्य आ० आर्यमंखु एवं आ० नागहस्ति के शिष्य थे। संभवतः वे आ० नागहस्ति के अन्तेवासी थे। आ० आर्यमंखु अप्रवाह्यमान एवं आ० नागहस्ति प्रवाह्यमान श्रुतज्ञान के धारक थे। उल्लेखानुसार उपरोक्त दोनों आचार्यों को कषायपाहुड की रचना के मूल स्रोत महाकम्मपयडिपाहुड एवं पंचम पूर्वगत पेज्जदोस पाहुड का भी ज्ञान था। आ० यतिवृषभ उपरोक्त दोनों आचार्यों के शिष्य थे, अतः इस बात की पर्याप्त संभावना है कि आपको भी इनका ज्ञान हो। शास्त्री[1] ने एतदविषयक उपलब्ध समस्त अन्तर्बाह्य साक्ष्यों का विश्लेषण कर यह स्थिर किया है कि यतिवृषभ आठवें कर्मप्रवाद पूर्व तथा द्वितीय पूर्व के पंचम वस्तु के चतुर्थ प्राभृत कर्मप्रकृति के भी ज्ञाता थे। उनका समय 176 ई० के आसपास है। तिलोयपण्णत्ती के वर्तमान संस्करण में उपलब्ध पाँचवीं शताब्दी तक के राजवंशों की नामावली किसी परवर्ती आचार्य द्वारा तिलोयपण्णत्ती के मूल संस्करण के पुनर्सम्पादन के समय क्षेपक रूप मे जोड़ दी गयी है। इन्हीं क्षेपक अंशों के आधार पर कई विद्वान आ० यतिवृषभ को आर्यभट्ट-I के समकालीन अथवा समीपवर्ती, 473-609 ई० के मध्य का स्वीकार करते हैं।[2]

आपका परम्परा के आधार पर त्रिकालवर्ती विश्व-रचना को व्यक्त करने वाला 9 अध्यायों में विभक्त ग्रंथ तिलोयपण्णत्ती मूलतः गणितीय ग्रंथ नहीं है, तथापि सूत्रबद्ध प्ररूपणाओं में फलों के वर्णन तथा यत्र-तत्र विवेचन में गणितीय विधियों का उपयोग गणित इतिहासज्ञों हेतु बहुमूल्य है। लक्ष्मीचन्द्र जैन के अनुसार, कर्मसिद्धान्त एवं अध्यात्म-सिद्धांत विषयक ग्रन्थों में प्रवेश करने हेतु इस ग्रंथ का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। कर्म परणाणुओं द्वारा आत्मा के परिणामों का दिग्दर्शन जिस गणित द्वारा प्रबोधित किया जाता है, उस गणित की रूपरेखा का विशेष दूरी तक इस ग्रंथ में परिचय कराया गया है। इस प्रकार यह ग्रंथ अनेक ग्रंथों को भलीभाँति समझने हेतु सुदृढ़ आधार बनता है।[3]

तिलोयपण्णत्ती के गणितीय वैशिष्ट्यों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत संयोजित किया जा सकता है :

मापन पद्धति : खगोलीय ग्रंथ होने के कारण क्षेत्र की माप की सूक्ष्मतम इकाई की आवश्यकता के साथ ही लोक की माप बताने हेतु विशाल संख्याओं एवं इकाईयों की आवश्यकता पड़ी। विविध मापों के परस्पर सम्बद्ध होने तथा विविध प्रकार की जीवराशियों की आयु आदि स्पष्ट करने हेतु काल की इकाईयों को भी परिभाषित करना पड़ा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रमान परमाणु से प्रारंभ होकर योजन और जगत श्रेणी तक जाते हैं और कालमान सूक्ष्मतम यूनिट 'समय' से प्रारंभ होकर अचलात्म [$= 84 \times 10^{31} \times 10^{90}$ वर्ष] तक जाते हैं। इसके बाद असंख्यात या उपमा-मान आते हैं। इनका विवरण अन्यत्र उपलब्ध है।

यही नहीं, धवला (816 ई०) में जिन लघुगुणक (logarithms) के सूत्रों का पल्लवन अर्द्धच्छेद एवं वर्गशलाका के रूप में हुआ है, उनके बीज इस ग्रंथ में विद्यमान हैं। बड़ी संख्याओं को सूक्ष्म रूप में व्यक्त करने में अर्द्धच्छेद एवं वर्गशलाकायें[4] बहुत उपयोगी हैं। यदि $2^a = b$, तो b के अर्द्धच्छेद a होंगे अर्थात् $\log_2 b = a$, एवं यदि $2^{2^a} = b$, तो b की वर्गशलाका a होगी अर्थात् $\log_2 \log_2 b = a$

विशाल संख्याओं को लघु रूप में व्यक्त करने की इस रीति के अतिरिक्त, विशाल राशियों को व्यक्त करने की एक अन्य रीति, वर्गित संवर्गित के रूप में भी उपलब्ध है।[5] इसके अन्तर्गत जब किसी राशि पर उसी राशि की घात चढ़ा दी जाती है, तो इस रीति को वर्गित संवर्गित कहते हैं। उदाहरणार्थ,

$$2 \text{ का द्वितीय वर्गितत संवर्गित} = \overline{2}|^2 = [2^2]^{[2^2]}$$

संख्या सिद्धान्त—कर्म संबंधी विविध घटनाओं के परिमाणात्मक निर्वचन हेतु आचार्य ने अनन्तों सहित संख्याओं के 21 भेदों का निरूपण किया। संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त के रूप में किये गये इस विभाजन का एक विशिष्ट पहलू ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में संख्यात एवं अनन्त के मध्य में असंख्यात की अवधारणा तथा अनन्त से बड़े अनन्त का स्थिर करना है। ग्रंथ में विभिन्न प्रकार की राशियों के उदाहरण एवं प्राप्त करने की विधियाँ भी दी हैं।

ज्यामितीय सूत्र—परम्परानुमोदित लोक संरचना का ग्रंथ होने के कारण इसमें लोक के विविध क्षेत्रों, पर्वतों का क्षेत्रफल, विविध प्रकार के सांद्रों का घनफल निकालने के प्रकरण अनेकशः आये हैं। ग्रंथ में अनेकानेक प्रकार की आकृतियों के क्षेत्रफल, वृत्ताकार आकृतियों की परिधि, वाण, जीवा आदि ज्ञात करने के सूत्र उपलब्ध हैं। सरस्वती के शब्दों में त्रिलोक प्रज्ञप्ति के पहले चार महाधिकार गणितीय सूत्रों के भंडार हैं।[6]

लोक को वेष्ठित करने वाले विविध स्फान सदृश आकृतियों, क्षेत्रों से युक्त वातवलयों का आयतन, उनका Topological defarmation कर, घनादि रूप में लाकर ज्ञात किया गया है। यह विधि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इस ग्रंथ में अनुपात के सिद्धान्त का भी व्यापक प्रयोग हुआ है।

तिलोयपण्णत्ती में जम्बूद्वीप का व्यास 100000 योजन तथा परिधि 316227 योजन, 3 कोश, 128 दण्ड, 1 वितस्ति, 1 अंगुल, 3 अवसन्नासन्न $\frac{23213}{105409}$ ख ख...... दिया गया है।

ग्रंथ के अनुसार यह दृष्टिवाद से उद्धृत सूक्ष्मतम मान है। यह गणना परिधि $= \sqrt{10}$ व्यास सूत्र से की गई बताई गयी है। किन्तु यदि $\sqrt{10}$ का वास्तविक मान लेकर इसकी गणना की जाये, तो परिधि का मान कुछ कम प्राप्त होता है। क्या यह त्रुटि है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए प्रो. गुप्ता[7] ने स्थिर किया कि यह परिकलन,

$$\sqrt{N} = \sqrt{a^2 + x} = a + \frac{x}{2a},$$ जहाँ $x < 2a$ लगभग मान के आधार पर किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिलोयपण्णत्ती में प्रयुक्त कतिपय प्रमुख करण सूत्र निम्न हैं। यदि वृत्त की परिधि, p, वृत्त की जीवा, c, वृत्त खंड के चाप की लम्बाई, s, वृत्त खंड की ऊँचाई (वाण), h, वृत्त की त्रिज्या, r, वृत्त का व्यास, d, वृत्त का क्षेत्रफल, a, है, तो

1. लम्बवृत्तीय बेलन का आयतन[8] $= \sqrt{10}\, r^2 h$
2. लम्ब प्रिज्म के छिन्नक आयतन[9] = आधार का क्षेत्रफल × प्रिज्म की ऊँचाई

   (यहाँ आधार का क्षे.[10] $= \frac{\text{मुख} + \text{भूमि}}{2}$ × दोनों सतहों के मध्य लम्ब दूरी)
3. वृत्त की परिधि[11] (P) $= \sqrt{d^2 \times 10}$
4. वृत्त के चतुर्थांश की जीवा का वर्ग $= 2r^2$
5. वृत्त की जीवा[12] $\equiv c = \left[4 \left(\frac{d}{2}\right)^2 - \left(\frac{d}{2} - h\right)^2 \right]^{1/2}$
6. वृत्त खंड का चाप[13] $\equiv s = [2\{(d+h)^2 - d^2\}]^{1/2}$
7. वृत्त खंड की ऊँचाई[14] $\equiv h = \frac{d}{2}\left[\frac{d^2}{4} - \frac{c^2}{4}\right]^{1/2}$
8. वृत्त खंड का क्षेत्रफल[15] $\equiv a = \frac{h\,c}{4}\sqrt{10}$
9. शंख (Conch) आकृति का आयतन[16] $= \left[(\text{विस्तार})^2 - \left(\frac{\text{मुख}}{2}\right) + \left(\frac{\text{मुख}}{2}\right)^2 \right] \times \frac{2}{4}$

स्पष्टतः यतिवृषभ ने π का जैन परम्परानुमोदित स्थूल मान 3 तथा सूक्ष्म मान $\sqrt{10}$ स्वीकार किया है।

प्रतीकात्मकता—तिलोयपण्णत्ती में यत्र-तत्र अनेक बीज रूप प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। इसकी अनेक संदृष्टियों (प्रतीकों) का आशय न समझ पाने के कारण वे अद्यावधि अपरिभाषित हैं। इन प्रतीकों का अतिविकसित रूप हमें टोडरमल के अर्थसंदृष्टि अधिकारों में देखने को मिलता है। इस ग्रंथ में रिण के लिए 'रि' एवं 1, मूल के लिए 'मू', जगश्रेणी के लिए '–', जग प्रतर के लिए '=', घन लोक के लिए '≡', रज्जु के लिए 'र', पल्य के लिए 'प', सुच्यंगुल उत्सेधांगुल के लिए '2', आवलि के लिए '2', प्रतरांगुल के लिए '4', घनांगुल के लिए '6', गुणा के लिए '।' प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। प्रकरणों के साथ प्रतीकों के अर्थ में परिवर्तन अनेक असुविधाओं को भी जन्म देता है।

श्रेणी व्यवहार गणित—ग्रंथ में व्यापक रूप से समान्तर एवं गुणोत्तर श्रेणियों की चर्चा है। विभिन्न स्थलों पर श्रेणियों के मुख (First Term), चय, गच्छ, सर्वधन (Sum of n Terms) निकालने के सूत्र एवं तत्सम्बन्धी उदाहरण दिये हैं। कुछ नवीन प्रकार की श्रेणियों की भी चर्चा है। इस ग्रंथ में समान्तर श्रेणी के लिए निम्नलिखित सूत्र उपलब्ध हैं :[17]

I $S_n = \frac{n}{2}[2a + (n-1)\,d]$

II $d = \frac{a-l}{n-l}$, $1 < a$

III $a_n = a + (n-1).\ d$

समान्तर श्रेणी के इन सूत्रों को स्पष्ट करने वाले प्रयोग भी ग्रन्थ में उपलब्ध हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ

1. नेमिचन्द्र जैन, शास्त्री, तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा, 2, अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद्, सागर, 1974, पृ. 85, 77-78, 87.
2. L. C. Jain, *Exact Sciences from Jaina Sources*, Vol. I, Rajasthan Prakrita Bharti Sansthan, Jaipur, 1982.
3. लक्ष्मीचन्द्र जैन, तिलोयपण्णत्ती एवं उसका गणित, अन्तर्गत तिलोयपण्णत्ती, भा. दि, जैन महासभा, कोटा, 1984, पृ. 49-68।
4. तिलोयपण्णति 1/131, 132, 5/280-81.
5. वही 4/310-312.
6. Geometry in Ancient & Medieval India, P. 76.
7. R. C. Gupta, Circumference of Jambudvipa in Jaina Cosmography. I. J. H. S. 10 (1). 1975, PP. 38-44.
8. तिलोयपण्णत्ती, 1/116।
9. वही, 1/165।
10. वही, 4/6।
11. वही, 4/170।
12. वही, 4/180।
13. वही, 4/180।
14. वही, 4/181।
15. वही, 4/2374।
16. वही, 5/3191।
17. वही. 2/58-105।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org